• वर्ष ६५ • अंक २१ • मूल्य ₹२०

नवम्बर (प्रथम) २०२३

पाक्षिक परोपकारी

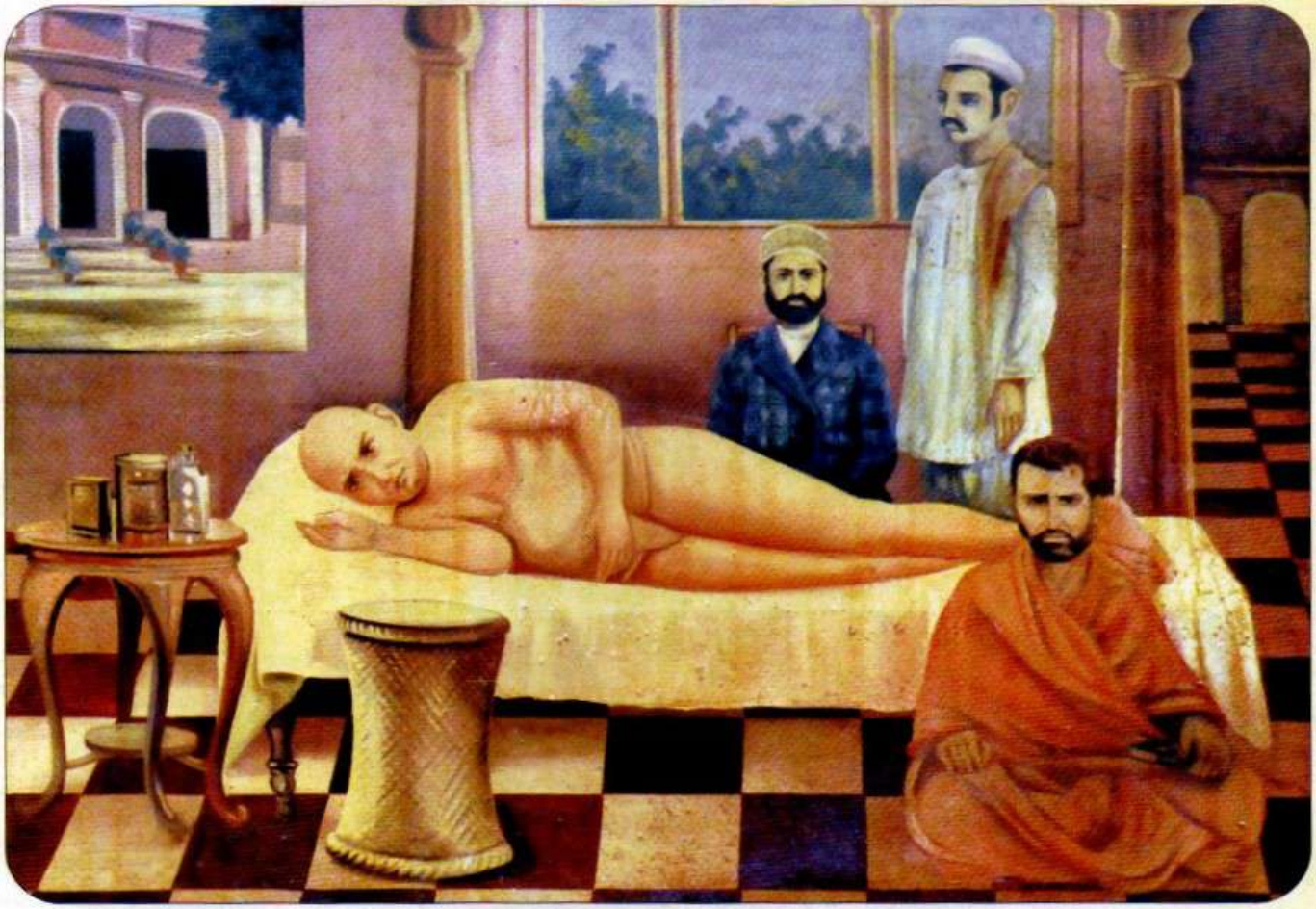

सच्चे शिव के उपासक, वेदोद्धारक, स्वराज्य के उद्घोषक,
कालजयी पुस्तक के लेखक, आर्यसमाज के संस्थापक,
निर्भीक, क्रान्तिकारी, दिग्विजयी संन्यासी

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज

के बलिदान पर कोटि कोटि नमन

ओ३म्

यजुर्वेद-भाषाभाष्यम्

(प्रथमो भागः)

परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

प्रथमाध्यायतः विंशति-अध्यायपर्यन्तम्

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित वैदिक पुस्तकालय

द्वारा

यजुर्वेद भाषा भाष्य प्रथम एवं द्वितीय भाग

का नवीन संस्करण प्रकाशित

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६५ अंक : २१

दयानन्दाब्दः १९९

विक्रम संवत् - कार्तिक कृष्ण २०८०

कलि संवत् - ५१२४

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२४

▪

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

▪

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

▪

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

▪

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

नवम्बर प्रथम, २०२३

अनुक्रम

०१. दीपावली पर्वोत्सव	सम्पादकीय	०४
०२. महर्षि दयानन्द का मूल्याङ्कन-६	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०६
* परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रम		०९
०३. श्रेष्ठतम कर्म 'यज्ञ' की व्यापकता	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	१०
* ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन		१७
०४. एक पुरानी उलझन-२	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८
०५. संस्था समाचार	श्री ज्ञानचन्द	२६
* आचार्य डॉ. धर्मवीर जी की सातवीं पुण्यतिथि मनाई		३०
* १४० वाँ ऋषि बलिदान समारोह		३१
* वेदगोष्ठी-२०२३		३३

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

दीपावली पर्वोत्सव

मानव अपने स्वभाव के अनुसार समय-समय पर पर्व-उत्सव आयोजित करता रहता है। पर्व का अभिप्राय ही है कि पूर्णता और प्रेरणा प्रदान करना। इनमें कुछ पर्व तो आमोद-प्रमोद के साधन बन चुके हैं। कुछ पर्व आंशिक रूप में अपना सांस्कृतिक स्वरूप बनाए हुए हैं।

वैदिक परम्परा में दर्श- पौर्णमास का स्थान महत्त्वपूर्ण है। दर्श-पौर्ण मास को सभी इष्टियों की प्रकृति माना जाता है। इनमें पौर्णमास का आयोजन पहले (पूर्णिमा के दिन) होता है। इसके पश्चात् अमावस्या के दिन दर्शेष्टि की जाती है।

दीपावली का पर्व कार्तिक मास की अमावस्या के दिन मनाया जाने वाला दर्शेष्टि पर्व है। वर्ष की बारह अमावस्याओं में कार्तिक अमावस्या का अन्धकार सघनतम माना जाता है। इसी दिन (इससे कुछ पूर्व के दिनों में) यह दर्शेष्टि तथा कृषक के घर नवीन धान्य (चावल, बाजरा, ज्वार, उड़द आदि) आने के कारण इस अवसर पर 'नवसस्येष्टि' का भी विधान है।

संसार में तेज का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। तेज श्री का मुख्य रूप है। तेजोहीन मनुष्य को हतश्री भी कहा जाता है। मनुष्य के जीवन में ईश्वर प्रदत्त तीन तेज अति महत्त्वपूर्ण हैं-

१. सूर्य २. चन्द्र ३. अग्नि

इस तेजत्रय की सहायता से मनुष्य के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। इन तीनों में सूर्य का तेज सर्वाधिक एवं मुख्य है, किन्तु गति क्रम के अनुसार सूर्य के समीप अथवा दूर होने से सूर्य का तेज भी अधिक अथवा न्यून मात्रा में प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र में मेष राशिस्थ सूर्य उच्च भाव तथा तुलाराशिस्थ सूर्य नीच भाव का है। ज्योतिष के अनुसार तुलाराशिस्थ में स्थित सूर्य तेज का अत्यल्प और विकृत प्रभाव होता है। अमावस्या के दिन चान्द्र-तेज का सर्वथा अभाव रहता ही है। इस अवस्था में तृतीय तेज 'अग्नि' ही शरण्य है।

वर्णव्यवस्था के रूढ़ होने पर पर्व भी उसके साथ सम्बद्ध कर दिए गए। जिस प्रकार श्रावणी उपाकर्म/रक्षाबन्धन ब्राह्मण वर्ण के साथ सम्बद्ध कर दिया गया उसी प्रकार तेज/श्री/समृद्धि की कामना के कारण इस पर्व को वैश्यवर्ग के साथ सम्बद्ध कर दिया गया।

वैसे भी वर्षा ऋतु अभी समाप्त हुई होती है। सब ओर पंक, नमी बढ़ने के कारण अनेक विध कृमि-कीट का भी प्राबल्य हो जाता है। इन सूक्ष्म रोग जन्तुओं के विनाश के लिए प्रकाश-तेज की दृष्टि से जहाँ इष्टि-यज्ञ का विधान है, वहीं लोक में इसका सूक्ष्म पर्यायरूप में दीप प्रज्वलन प्रारम्भ हो गया। दीप प्राबल्य के आधार पर ही इसे दीपमालिका-दीपावली नाम से भी माना जाने लगा। नवान्न के आगमन पर नवसस्येष्टि तो गौण हो गया और दीपावली अधिक प्रचलित हुआ।

नवसस्येष्टि-दर्शेष्टि अथवा दीपावली के अतिरिक्त वेदभक्त आर्यजन की दृष्टि में इसका एक अन्य भी महत्त्व है, वह है- महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण दिवस।

उन्नीसवीं सदी यद्यपि पुनर्जागरण की सदी मानी जाती है। उस समय धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से इस प्रकार का वातावरण था, जिसमें सभी क्षेत्रों में कुरीतियों तथा अन्धविश्वास ने जड़ जमाई हुयी थी।

महर्षि ने धर्म के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए उसे जीवन का अनिवार्य अंग प्रतिपादित किया। महर्षि की दृष्टि मनुष्य-मनुष्य के मध्य किसी भी धर्माधारित विभेद को स्वीकार नहीं करती।

सामाजिक क्षेत्र में महर्षि ने जन्मना जाति-प्रथा की जड़ पर प्रहार करते हुए-'शूद्रातिशूद्रों की पाठशाला' में

जाकर वेदोपदेश प्रदान किया। नारी सशक्तिकरण के प्रबल समर्थक महर्षि ने स्त्री शिक्षा पर बल प्रदान किया।

विदेशी शासन के होते हुए भी सर्वप्रथम स्वदेशी राज्य का उद्घोष करनेवाले भी वही थे।

वेद को ईश्वर का निःश्वास मानकर मानव मात्र को उसके अध्ययन का अधिकारी मानकर, जनसाधारण के लिए संस्कृत एवं आर्यभाषा हिन्दी में भाष्य किया, किन्तु विष प्रदान के कारण कार्तिक अमावस्या संवत् १९४० वि. तदनुसार ३० अक्टूबर १८३० के इसी दीपावली के दिन महर्षि का निर्वाण हुआ।

महर्षि का निर्वाण दिवस होने के कारण यह दीपावली उनके अनुयायिओं के लिए यह संकल्प का पर्व है। महर्षि के प्रारम्भ किए अधूरे कार्यों - वेदभाष्य तथा वैदिक सिद्धान्तों को जनसामान्य की भाषा के माध्यम से विश्व के प्रत्येक मानव तक पहुँचाना तथा जन्मनाजाति प्रथा का समूल उन्मूलन, मनुष्य और मनुष्य के मध्य किसी भी प्रकार का धार्मिक विभेद आदि को समाप्त करने के साथ प्रखर राष्ट्रवाद को सम्बल प्रदान करने के संकल्प का पर्व है। इस दृष्टि से जितना कार्य होना चाहिए था, उसका स्वल्प ही हुआ है। लक्ष्य पूर्ति के लिए सर्वात्मना समर्पण ही प्रकाश का अनुवर्तन हो सकेगा।

-डॉ. वेदपाल

आर्ष ग्रन्थों का पठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

वेद पथ

कुसमाकर

'वेद-पथ' निर्णय करेगा, न्याय क्या अन्याय क्या है?
आज तक समझे न, जीवन का धवल ध्रुव-ध्येय क्या है?
चल पड़े पथ पर न समझे, 'श्रेय' क्या है 'प्रेय क्या' है?
किसलिये आया यहाँ हूँ, चाहिए करना मुझे क्या?
क्यों पराभव में पड़ा, भव सिन्धु से तरना मुझे क्या?
सत्य, सुख, सुविधा, सफलता का सबल सदुपाय क्या है?

प्रिय 'प्रलोभन' के उदधि में एक ऐसा ज्वार आया।
जो प्रकम्पित प्राणियों में 'हीनता' का भार लाया।
ऊर्मियाँ 'उत्कोच' को उठती अधम अविचार भरतीं।
दुष्ट दानवता प्रबल पाखण्ड की बौछार करतीं।
विधि-विधानों से विहित बोलो, विमल व्यवसाय क्या है?

बढ़ गई इतनी महत्त्वाकाँक्षाएँ आज जन की।
विश्व के रक्तिम दृगों में तैयारी है गाँव मन की।
स्वार्थ की उन्मत्त मदिरा मग्न है परमार्थ प्रतिमा।
भूल भ्रमरी सी भटकती आत्म-गौरव-ज्ञान-गरिमा।
व्यास 'व्यय' का बढ़ रहा है, पर न समझे 'आय' क्या है?

खिंच गई ऐसी क्षितिज पर ग्राम धूमिल एक रेखा ।
विश्व ने प्यासे दृगों से, एक क्या सौ-बार देखा
द्रोह के द्रुम पर चढ़ी कितनी विषय विषबेलियाँ हैं।
बह रही है शोण-शोषण, कर रही अठखेलियाँ हैं।
कौन समझावे कि अन्तर छिपा अभिप्राय क्या है?
वेद-पथ निर्णय करेगा, 'न्याय' क्या 'अन्याय' क्या है?

आर्योदय २० मार्च १९६६ से साभार।

महर्षि दयानन्द का मूल्याङ्कन-६

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महर्षि का प्रचार अभियान - कुछ विशेषतायें महर्षि के वेद प्रचार अभियान की विशेषताओं की ओर भी ऋषि का मूल्याङ्कन करने वालों ने पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया। ध्यान तो कुछ एक देशी विदेशी विद्वानों ने कुछ-कुछ दिया, परन्तु जितना ध्यान इस पर देना चाहिये था उतना नहीं दिया गया। आजकल आर्यसामाजिक पत्रों में देश के स्वराज्य संग्राम तथा स्वदेशी के प्रचार पर लिखने वाले नये-नये इतिहासज्ञ सामने आ रहे हैं, इनके पास रटी रटाई चार छह बातें हैं। कुछ ठोस विशेष सामग्री नहीं। यथा महर्षि जी ने जालन्धर में दिये गये एक व्याख्यान में सन् १८५७ के विप्लव में गोरों द्वारा लखनऊ आदि में निर्दोषों की हत्या व क्रूर व्यवहार की कड़ी निन्दा करते हुये लिखा है कि इस प्रकार अन्यायकारी शासन देर तक नहीं रहता।

एक ही नेता का ऐसा कहने का साहस हो सका - उन्नीसवीं शताब्दी के एक ही नेता को ऐसा लिखने का साहस हो सका। बीसवीं शताब्दी में श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने यह डंके की चोट से लिखा कि ऋषि के पत्रव्यवहार में प्रत्येक दूसरे तीसरे पृष्ठ पर देशोन्नति, देश सुधार, जनकल्याण पर ऋषि ने बल देकर लिखा है। और किसी नेता किसी महापुरुष के पत्रव्यवहार का ऐसा मुख्य विषय देशोन्नति नहीं है। शिल्प, औद्योगिक उन्नति, कृषि, कंगाली, देश-विदेश में व्यापारिक उन्नति के विषयों को ऋषि ने लिया है। देश का दु:खड़ा तो उनके व्याख्यानों का ऐसा मुख्य विषय रहा कि आर्य विचारक किसी कवि की इन पंक्तियों में उनकी मनोदशा को चित्रित करते रहे -

हम रात को उठकर रोते हैं
जब चैन से आलम सोता है

बड़ौदा में उनके व्याख्यानो का विरोध - महर्षि ने बड़ौदा में सबसे पहला व्याख्यान देशोन्नति पर (सन् १८७५) दिया तथा दूसरा वेदाधिकार विषय पर दिया। दूसरे व्याख्यान को सुनने के लिये श्रोता बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुये। पण्डित लोग भी अच्छी संख्या में आये। श्री महाराज ने मधुर स्वर से वेद की सुप्रसिद्ध ऋचा-'यथेमाँ वाचं कल्याणीम्' का उच्चारण करके इसकी व्याख्या आरम्भ की ही थी कि स्वयं को सनातनकर्मी मानने वाले जन्माभिमानी ब्राह्मण उठ खड़े हुये। इन सनातन धर्म की दुहाई देने वालों ने ऋषि का जितना विरोध किया इतना विधर्मियों ने नहीं किया।

उन जन्माभिमानी ब्राह्मणों ने कानो में उंगलियाँ दे दीं, क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता रही है कि स्त्री, शूद्र तथा मुसलमान आदि को वेद के श्रवण का अधिकार नहीं है। श्रोताओं में उस समय बड़ौदा के प्रसिद्ध गायक नवाब मौलाबख़्श भी उपस्थित थे। उस युग में उसे गायक के रूप में एक लाख रुपये पेंशन के रूप में प्राप्त होते थे। कहा जाता है कि उस घड़ी कुछ शास्त्रियों ने यहाँ तक कह डाला कि स्वामी जी ब्राह्मण कुलोत्पन्न नहीं हैं। तभी तो ऐसा कर रहे हैं। बैठ जाओ! अथवा चले जाओ!! पण्डितों के आचरण पर मणिभाई यशभाई, रावबहादुर गजानन आदि ने दृढ़तापूर्वक उन शास्त्रियों से कहा कि या तो आप लोग बैठ जाएँ, नहीं तो सभा छोड़कर चले जाएँ परन्तु फिर थोड़ी देर पश्चात् वे लोग कोलाहल करने लगे कि हमारे साथ शास्त्रार्थ कर लो। स्वामी जी ने कहा- ''व्याख्यान को समाप्त होने दीजिये फिर शास्त्रार्थ भी हो जाएगा।'' ऋषि जी के इतना कहने पर भी वे शोर मचाते रहे।

कोई शास्त्रार्थ का साहस न कर सका - शास्त्रार्थ भी किसने करना था? यही जन्माभिमानी ब्राह्मण अंग्रेजों को संस्कृत पढ़ाते रहे। उन्होंने हिन्दुओं की पौराणिक

मान्यताओं की भी धज्जियाँ उड़ाकर लाखों को ईसाई बना लिया।

अमेरिका के sunday magazine ने लिखा था कि देश भर का कोई ब्राह्मण ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने का साहस न कर सका। बड़ौदा की यह घटना ऋषि का मूल्यांकन करने के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे प्रमाणित होता है कि 'सनातन धर्म- सनातन धर्म' की रट लगाने वालों ने धर्म प्रचार तो क्या करना था ये लोग तो दूसरे मतावलम्बियों को वेद मन्त्र सुनाने पर ही भुन जाते रहे। ऋषि दयानन्द डटकर अपने मन्तव्यों का प्रचार करते रहे।

इन्दौर के श्री विष्णु गुप्त द्वारा मूल्याङ्कन - श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को इन्दौर के श्रीयुत विष्णु गुप्त ने ऋषि की वाणी का मूल्याङ्कन करते हुये कहा था, "स्वामी जी उत्कृष्ट वक्ता थे। उनका स्वर उच्च, गम्भीर और मधुर था। उनकी बोलने की रीति तेजःपूर्ण और उनका आक्रमण तीव्र होता था, उनकी वाणी एकदम लोगों के हृदय में प्रवेश कर जाती थी, इसलिए वे विरुद्ध-पक्ष के लोगों को असह्य हो जाती थी और वे बीच में से ही उठकर चले जाते थे।"

राजस्थान के बनेड़ा नगर निवासी विद्वान् श्री नगजीराम ने अपने विद्यार्थी जीवन में ऋषि दर्शन किये थे। आपने उस महर्षि के शरीर का जो विशद वर्णन किया है वह अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। उनके हस्तलेख का चित्र हमने 'सम्पूर्ण जीवन चरित्र' के दूसरे भाग पृष्ठ ५३० पर दिया है। इसे पढ़कर एक उर्दू कवि का यह पद्य हमारे अधरों पर उतर आया -

सूरते ज़ेबा पे तेरी सीरते ज़ेना निसार।
एक गर थी महताब दूसरी थी आफ़ताब।।

"स्वामी जी महाज के शरीर का वर्णन इस प्रकार है कि ऐसी दीर्घ पुष्ट एवं भव्यमूर्ति मैंने उसके सिवाय आज तक ऐसी कहीं किसी के भी नहीं देखी। महात्मा के मस्तक की परिधि ढाई फीट से कम न थी और गर्दन बड़ी ऊँची, मुखारविन्द गोलाई को लिए हुए लम्बा था। नेत्र विशेष बड़े नहीं थे, कर्ण न नासिका बड़े-बड़े थे। दोनों भुज बड़े पुष्ट और आजानु लम्बे थे। वक्षस्थल किसी वीर धनुषकारी के समान चौड़ा और दृढ़ था। शरीर अति पुष्ट होने पर भी उदर छिटका हुआ नहीं था। दोनों जाँघें बड़ी पुष्ट और तीन फीट की परिधि से कम नहीं थीं। पिंडलियाँ भी पुष्ट एवं साफ़ थीं। पैर सवा फीट के करीब लम्बे होंगे। शरीर का वर्ण गोरा था। शिर के बाल श्वेत होने लग गये थे। जिस समय वे घूमने को निकलते मलतानी मिट्टी शरीर पर लगा, जोड़े पहन, एक दोशो को सिर ये बाँध चद्दर से शरीर को ढक हाथ लट्ठ कमण्डल लिये स्वयं एकाकी ही घूमने निकलते थे।

उस समय जंगल में यदि किसी अज्ञात पुरुष के अचानक दृष्टिगोचर होते तो वह इनको मनुष्य नहीं देव विशेष की मूर्ति मान चकित होके मार्ग को छोड़ एक तरफ खड़ा हो जाता। दर्शन कर बतलाने पर निर्भय हो प्रसन्न होता। आपका घूमना तीन मील से कभी कम नहीं होता था। एक दिन मुझे व मेरे मित्र गौरी शंकर जी को स्वामी जी के साथ घूमने जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु स्वामी जी के धीमे-धीमे चलने पर भी हम दोनों उनके साथ नहीं निभा सके। अतएव ४००/५०० गज़ के फ़ासले से वापिस लौट आये।[२]"

पादरी टी. जे. स्कॉट ने भी ऋषि के गंगा तट पर दर्शन कर उनके भव्य शरीर पर बहुत सुन्दर शब्दों में लिखा परन्तु नगजीराम के इस लेख जैसा अभावोत्पादक वर्णन दूसरा नहीं मिलेगा।

प्रदूषण मुक्त करने का आन्दोलन छेड़ा - आज सारे संसार में Pollution (प्रदूषण) शब्द का प्रयोग किया जाता है आज से सत्तर वर्ष पूर्व इसका अर्थ मात्र गन्दा करना किया जाता था। अब तो प्राथमिक विद्यालयों के दूसरी चौथी के नन्हें-नन्हें विद्यार्थी इस शब्द का अर्थ वायु प्रदूषण ही लेते हैं।

ऐसा पहला विचारक - इस शब्द का इन अर्थों

में प्रयोग करने वाला विश्व का पहला विचारक सुधारक महर्षि दयानन्द था कोई और नहीं। यह ठीक है कि ऋषि दयानन्द अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे अत: Pollution पाल्यूशन शब्द का उन्होंने प्रयोग क्या करना था, परन्तु वायुमण्डल को दूषित करना मनुष्य समाज तथा प्राणी जगत् के लिये घातक मानकर आपने विश्व में इसके विरुद्ध सबसे पहले आन्दोलन छेड़ा। उस समय किसी सरकार किसी नेता और किसी वैज्ञानिक के मस्तिष्क में वायु प्रदुषण से प्राणियों को होने वाली हानि का संकट था ही नहीं।

महर्षि जहाँ भी जाते थे किसी को फूल तोड़ते देखकर वह इस पाप-दुष्कर्म मानकर रोकते थे। जब सन् १८७७ में आप तत्कालीन पंजाब की राजधानी लाहौर पधारे तो उस समय एक प्रेमी सज्जन उनके लिये एक फूल भेंट करने के लिये तोड़कर लाया था। तब ऋषि जी का उस सज्जन से क्या संवाद हुआ उसे ऋषि जीवन से यहाँ उद्धृत किया जाता है।

''एक दिन पण्डित जी ने (पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री) एक पुष्प लाकर भेंट किया। स्वामी जी ने कहा- 'यह तुम क्यों तोड़ लाये।' पण्डित शिवनारायण जी ने कहा कि आपके लिए लाया हूँ।''

स्वामी जी ने कहा कि यह तुमने बुरी बात की। पूछा - 'किस प्रकार?' स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जितने समय के लिए ईश्वर ने सुगंधि ...''

विचारशील प्रबुद्ध पाठक इस उद्धरण को बार-बार पढ़ें विचारें। अपने आपसे ही पूछें कि क्या उन्नीसवीं शताब्दी तक विश्व में कहीं भी जन्मे किसी महापुरुष किसी राजनेता और वैज्ञानिक के जीवन में ऐसी कोई छोटी बड़ी घटना है। संसार में क्या कभी किसी महापुरुष ने फूल तोड़ने की यह हानियाँ कभी बताई या कहीं? फूल न तोड़ने के जो लाभ ऋषि ने कहे वे कभी किसी ने कहे क्या? यदि ऊपर इस उद्धरण में हम कोष्टक में सन् १८७७ न देते तो आज का पाठक इसे सन् २०२३ की घटना बताता। क्या इस कथन का एक-एक शब्द पूर्णतया वैज्ञानिक सोच चिन्तन नहीं है?

इसी कारण से इतिहास के एक विद्यार्थी के नाते से हमने यह प्रसंग, यह घटना देते हुए इसके शीर्षक में ही यह बता दिया कि यह ऋषि दयानन्द ही थे जिन्होंने इतिहास में सर्वप्रथम विश्व के प्रदूषण मुक्त कने का आनदोलन छेड़ा।

ऋषि दयानन्द का सरल-स्पष्ट हितकर उपदेश - महर्षि दयानन्द का मूल्याङ्कन करने वाले विद्वानों तथा इतिहासकारों को उनके यत्र-तत्र दिये गये सर्वहितकारी उपदेशों तथा व्याख्यानों पर गम्भीरता से विचार करके उनके व्यक्तित्व व देन का मूल्याङ्कन करना चाहिये। ऋषिवर १७ अक्टूबर सन् १८७७ से २६-१०-१८७७ तक पुन: लाहौर में डेरा डालकर वेद-प्रचार में मग्न रहे। इस बार आप नवाब रज़ा अली के उद्यान में ठहरे थे। उस समय की महत्त्वपूर्ण घटना यहाँ दी जाती है। विचारशील गुणी इतिहासप्रेमी इसपर गम्भीरता से चिन्तन करके अपना निर्णय दें।

धन सम्पदा का आधिक्य - ''एक दिन इसी उद्यान में एक पादरी महोदय तथा एक मिस महोदया स्वामी जी से मिलने को आए। वार्तालाप करते हुए स्वामी जी ने कहा कि सम्पदा का एक सीमा से अधिक हो जाना जाति के पतन का कारण होता है। इस आर्यजाति का पतन भी ऐसे ही हुआ। यह भी कहा कि अब अंग्रेजों की भी धन के आधिक्य के कारण आदत बिगड़ती जाती है। हमारा ऐसा अनुभव है कि जिन दिनों हम वनों में रहा करते थे हम प्रभातकाल में सूर्योदय से पूर्व बहुत से अंग्रेजों को वायु सेवन करते देखा करते थे, परन्तु आजकल अंग्रेज बहुत दिन चढ़े उठते हैं।''

ऋषि ने निष्पक्ष होकर एक सर्वहितकारी खरी बात अपने देशवासियों व विदेशियों के लिए लिख दी। धन का आधिक्य सबके पतन का कारण होता है। 'Lixury leads to downfall.' यह क्या गोरों को कहने

का कभी किसी ने साहस किया?

गोस्वामी घनश्याम, बाल शास्त्री के मुख से ऋषि का एक प्रसंग - हमने महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन चरित्र के दोनों भागों में गोस्वामी घनश्याम मुल्तान निवासी द्वारा वर्णित पं. बाल शास्त्री से काशी शास्त्रार्थ की चर्चा का प्रसंग दिया है। जीवन चरित्र के पहले भाग से इसे यहाँ उद्धृत किया जाता है। अधिक जानकारी के इच्छुक इसे दूसरे भाग का पृष्ठ १५१-१५२ भी अवश्य देखें।

गोस्वामी घनश्याम दास मुल्तान के एक मूर्धन्य संस्कृतज्ञ विद्वान् थे। स्वामी वेदानन्द जी भी कभी कुछ समय इनसे पढ़े थे। आप आर्यसमाजी तो नहीं थे, परन्तु वेद व ऋषि के भक्त प्रशंसक थे। स्वामी वेदानन्द जी इस प्रसंग को अपने लेखों तथा व्याख्यानों में प्रचारित करते रहे। अपनी पुस्तक ऋषि बोध कथा में भी दिया है। इस लेखक ने देश विभाजन के पश्चात् सन् १९४७ में लेखराम नगर कादियाँ में उनकी व्याख्यान माला में पहले पहल सुना था।

''गोस्वामी घनश्यामदास जी श्रीमन्त मुलतान निवासी सम्वत् १९३६ के प्रयाग कुम्भ के पश्चात् गोस्वामी गोवर्धन दास तथा पं. रामदेव एवं अनन्तराम जी के साथ जीवनगिरि जी प्रज्ञाचक्षु के निवास पर गये जो अच्छे विद्वान् तथा वेदान्त के अधिकारी पण्डित थे। पण्डित अनन्तराम ने उनसे प्रश्न किया कि महाराज वेद का अधिकार सबको है और साथ ही अध्याय २६वाला मन्त्र पढ़ा। जीवनगिरि जी ने कहा, इसका यह अर्थ नहीं प्रत्युत यह है कि यज्ञ में यजमान ऐसी वाणी कहे कि जो सबके कल्याणवाली हो फिर स्वामी जी के विषय में पूछा तो उन्होंने कहा कि वह ब्राह्मण का पुत्र है तथा स्वामी पूर्णानन्द जी का शिष्य है। संस्कृत के बोलने तथा योग में उसकी विशेष रुचि है। खण्डन मण्डन में भी आरम्भ से ही उसकी रुचि थी तथा बहुत चञ्चल बुद्धि था। तब गोस्वामी जी आदि को निश्चय हो गया कि यह केवल स्वार्थी लोगों का कथन है कि वे ईसाई हैं तथा ईसाई बनाने के लिए नियुक्त किये गये हैं। फिर वह गोस्वामी घनश्यामदास तथा चाँदूमल खत्री मुल्तानी के साथ काशी गये और बाल शास्त्री जी के निवास पर उन्हें मिले। वार्तालाप करते हुए प्रश्न किया कि आपका तथा स्वामी जी का जो शास्त्रार्थ (काशी शास्त्रार्थ सन् १८६९) हुआ था उसमें किसकी जय हुई थी?

तब शास्त्री जी ने अत्यन्त मधुर वाणी तथा नम्रता से कहा कि हम गृहस्थी तथा वे यति संन्यासी हमारे पूज्य, उनका हमारा शास्त्रार्थ कहाँ बन सकता है? इन शब्दों में गोस्वामी जी के सब सन्देह दूर हो गये और उन्हें स्वामी जी के सत्यवादी तथा सच्चा वैदिक धर्मोपदेशक होने पर पूर्ण विश्वास हो गया।''

गोस्वामी को कभी किसी ने उद्धृत नहीं किया - यहाँ यह भी बताना उपयोगी रहेगा कि कभी ऋषि दयानन्द की वैदिक मान्यताओं पर गोस्वामी घनश्याम आर्य पत्रों में पठनीय लेख देते रहे। उन्हीं मे से दो लेख इस सेवक ने परोपकारी मे पुनः प्रकाशित करवाये थे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का इन गोस्वामी जी से बहुत स्नेह था और गोस्वामी जी भी आर्य विद्वानों से मेल मिलाप रखते थे। मुलतान के आर्यों से भी आपका मिलवर्तन था। ऋषि का मूल्याङ्कन करते हुये गोस्वामी जी को किसी लेखक इतिहासकार ने कभी उद्धृत नहीं किया।

परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रम

०१. ऋषि मेला - १७, १८, १९ नवम्बर-२०२३

०२. सृष्टि सम्वत् की एकरूपता संवाद - १६ व १७ दिसम्बर-२०२३

कृपया भाग लेने के इच्छुक पूर्व से ही प्रतिभाग की सूचना दे देवें।

श्रेष्ठतम कर्म 'यज्ञ' की व्यापकता

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी), महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[**निर्देश** – स्पष्टता के लिए सर्वत्र उदात्त अक्षर के ऊपर 'उ' (क) तथा निघात (= सन्नतर) अक्षर के नीचे अर्धचन्द्र (कु) का प्रयोग किया गया है। मन्त्र एवं पदपाठ में शिरोरेखा से ऊपर निर्दिष्ट अङ्क कण्डिका-मन्त्र के सूचक हैं तथा शिरोरेखा के समवर्ती अङ्क मन्त्र में पादविभाजन के सूचक हैं। छन्दोनाम के समक्ष कोष्ठक में प्रदत्त संख्या अभीष्ट छन्द की अक्षरगणना की परिचायक है। + अथवा - चिह्न के साथ प्रदत्त संख्या छन्द में एक या दो अक्षरों की न्यूनता वा अधिकता को प्रदर्शित करती है, जो छन्दोनाम के साथ उल्लिखित निचृत्-भुरिक्-विराट्-स्वराट् विशेषणों की पोषक है।]

[ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–सविता, छन्दः–स्वराड् बृहती (३६+२), +ब्राह्म्युष्णिक् (४२), स्वरः–मध्यमः, +ऋषभः]

विषयः– अथोत्तमकर्मसिद्ध्यर्थमीश्वरः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

(उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए, इस विषय का प्रकाश यजुर्वेद के इस प्रथम मन्त्र में किया गया है।)

इषे त्वो[१]र्जे त्वा[२] वायवं स्थ[३] देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण[४]ऽ आ प्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं +प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा[५] मा व स्तेनऽ ईशत माघशंसो[६] ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वी[७]र्यजमानस्य पशून् पाहि[८] ॥यजु०१.१॥

[अनुदात्ताः-०, निघाताः-१९, उदात्ताः-२४, स्वरिताः-१६, प्रचयाः-२१ = ८० अक्षराणि, कण्डिका-मन्त्राः-५, पादाः-८]

पदपाठः– इषे। त्वा।[१] ऊर्जे। त्वा।[२] वायवः। स्थ।[३] देवः। वः। सविता। प्र। अर्पयतु। **श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठऽतमाय।** कर्मणे।[४] आ। प्यायध्वम्। अघ्न्याः। इन्द्राय। भागम्। **प्रजावतीरिति प्रजाऽ वतीः।** अनमीवाः। अयक्ष्माः।[५] मा। वः। स्तेनः। ईशत। मा। **अघशंसुऽ इत्यघऽ शंसः।**[६] ध्रुवाः। अस्मिन्। **गोपताविति गोऽ पतौ।** स्यात। बह्वीः।[७] यजमानस्य। पशून्। पाहि[८]॥ १॥

[अनुदात्ताः-२५, निघाताः-२३, उदात्ताः-३२, स्वरिताः-१३, प्रचयाः-१२ = १०५ अक्षराणि, अवगृहीतपदानि-४, गलितपदानि-०, सकलपदानि-३५]

सम्पादकीय टिप्पणी– महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य में प्रदत्त 'संस्कृत पदार्थ' पर आधारित यह 'दयानन्द-भाष्य बोधामृत' कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। मन्त्र तथा पदपाठ में उदात्त एवं निघात स्वरों का चिह्नाङ्कन, अनुदात्तादि स्वरों का परिगणन, मन्त्र में अक्षरों की संख्या, कण्डिकामन्त्र एवं पादविभाजन आदि का निर्देश प्रथम बार हुआ है। शुद्धतम स्वराङ्कन तथा स्वरों के परिगणन के लिए लेखक ने स्वयं ही कम्प्यूटर-एप्लीकेशन का विकास किया है और वैदिक-स्वर पद्धति को गणितीय स्वरूप प्रदान किया है, जो इस क्षेत्र में अनूठा प्रयास

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
इषे उ	अन्नविज्ञानयोः प्राप्तये॥ इषमित्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) इषतीति गतिकर्मसु पठितम्॥ (निघं०२.१४) अस्माद्धातोः क्विपि कृते पदं सिध्यति॥	हे विज्ञानस्वरूप परमेश्वर! अन्न और अन्न की प्राप्ति के विज्ञान को प्राप्त करने के लिए
त्वा	विज्ञानस्वरूपं परमेश्वरम्॥	हम आपकी उपासना करते हैं।
ऊर्जे उ	पराक्रमोत्तमरसलाभाय॥ 'ऊर्ग्रसः'। (शत०५.१.२.८)॥	हे अनन्त पराक्रम और आनन्दरस से परिपूर्ण प्रभु! शक्ति, उत्साह तथा आपके उत्तमोत्तम आनन्दरस को पाने के लिए
त्वा	अनन्तपराक्रमानन्दरसघनम्॥	हम आपकी स्तुति करते हैं।
वायवः उ	सर्वक्रियाप्राप्तिहेतवः स्पर्शगुणा भौतिकाः प्राणादयः॥ वायुरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.४) अनेन प्राप्तिसाधका वायवो गृह्यन्ते॥ वा गतिगन्धनयोरित्यस्मात् कृवापा०। (उणा०१।१) अनेनाप्युक्तार्थो गृह्यते॥	जिस प्रकार स्पर्श गुण से युक्त सभी भौतिक प्राण आदि समस्त क्रियाओं की प्राप्ति में कारणभूत होते हैं, वैसे ही हमारे समस्त कर्मों के शक्ति-स्रोत
स्थ	सन्ति॥ अत्र पुरुषव्यत्ययेन प्रथमपुरुषस्य स्थाने मध्यमपुरुषः॥	आप ही हैं।
सवितुः उ	सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यवान् जगदीश्वरः॥	सकल जगत् का उत्पादक समस्त ऐश्वर्य्यों का स्वामी, जगदीश्वर,
देवः उ	सर्वेषां सुखानां दाता सर्वविद्याद्योतकः॥ देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता। (निरु०७.१५)॥	समस्त सुखों का दाता तथा समस्त विद्याओं का प्रकाशक सविता देव

है। लेखक ने मन्त्र तथा पदपाठ में उदात्तादि स्वराङ्कन के शुद्ध प्रकाशन के लिए स्वयं ही Yajurved_MDSU01 नामक फोन्ट का निर्माण किया है। 'दयानन्द-भाष्य बोधामृत' में महर्षि के 'संस्कृत पदार्थ' को ही आधार बनाते हुए सहजता से बोधगम्य वाक्यरचना की गई है, जिससे सामान्य पाठक भी मन्त्र के भाव को सरलता से समझ सके। 'तत्त्वबोध' में लेखक ने मन्त्र-पदों में प्रयुक्त स्वरों के आधार पर उनके सूक्ष्मभावों को प्रकट करने का स्तुत्य प्रयास किया है, जो वेदार्थ में स्वरों की उपयोगिता को परिलक्षित करता है। आशा है महर्षि के भाष्य की पोषक इस नव-विधा का सुधी पाठक स्वागत करेंगे।

—डॉ. वेदपाल

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
उ श्रेष्ठतमाय	अतिशयेन प्रशस्तः श्रेष्ठः सोऽतिशयितः श्रेष्ठतमः तस्मै यज्ञाय॥	यज्ञ कहलाने योग्य लोकोपकारक श्रेष्ठतम
उ कर्मणे	कर्तुं योग्यत्वेन सर्वोपकारार्थाय॥	कर्मों की सिद्धि के लिए
उ वः	युष्माकम्॥	आपको, हमको सभी को
उ प्र, अर्पयतु	प्रकृष्टतया संयोजयतु॥	भली प्रकार प्रवृत्त करे। अर्थात् हम सदैव याज्ञिक भाव से श्रेष्ठ कर्म ही करें, जो हम सभी के लिए उपकारक हो, जिससे जड़-चेतन किसी की भी हानि न हो।
उ आ, प्यायध्वम्	आप्यायामहे वा॥ अत्र पक्षे व्यत्ययः॥	परस्पर इस उपकारी वृत्ति से आप हम सब नित्य उन्नति करें।
अघ्न्याः	वर्धयितुमर्हा हन्तुमनर्हा गाव इन्द्रियाणि पृथिव्यादयः पशवश्च॥ 'अघ्न्या इति गोनामसु पठितम्'। (निघं०२।११)॥	हम अपनी इन्द्रियों का दुरुपयोग न करके आत्मघाती न बनते हुए, भौतिक पदार्थों का अनावश्यक दोहन न करके पार्थिव-हत्या के पाप से बचते हुए तथा अपने स्वार्थ या मनोरंजन के लिए गाय आदि जीवों पर अत्याचार न करते हुए
उ इन्द्राय	परमैश्वर्य्ययोगाय॥	आपके परम ऐश्वर्य से अपने आप को जोड़ देने के लिए
उ भागम्	सेवनीयं भागानां धनानां ज्ञानानां वा भाजनम्॥	हम आपके भजनीय स्वरूप का सेवन करते हैं। आपकी कृपा से हमारी इन्द्रियाँ, सभी भोज्य पदार्थ तथा हमारे गाय आदि पशु
उ प्रजावतीः	भूयस्यः प्रजा वर्त्तन्ते यासु ताः॥ अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्॥	निरन्तर शक्ति-सम्पन्न, प्रजावान्,
उ अनमीवाः	अमीवो व्याधिर्न विद्यते यासु ताः॥ 'अम रोगे' इत्यस्माद् बाहुलकादौणादिक 'ईवन्' प्रत्ययः॥	सामान्य रोगों से रहित, स्वस्थ तथा
उ अयक्ष्माः	न विद्यते यक्ष्मा रोगराजो यासु ताः॥ यक्ष इत्यस्मात्। अर्त्तिस्तु०। (उणा०१।१३८) अनेन 'मन्' प्रत्ययः॥	यक्ष्मा आदि असाध्य रोगों से रहित हों।

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
वः	ताः॥ अत्र पुरुषव्यत्ययः॥	आपके सान्निध्य से शक्ति और उत्साह पाकर पराक्रमी बने हम लोगों पर
स्तेनः	चोरः॥	कोई चोर-वृत्ति का भ्रष्टाचारी शासक
मा, ईशत	निषेधार्थे॥ ईष्टां समर्थो भवतु॥ अत्र लोडर्थे लङ्। बहुलं छन्दसि [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुगभावः॥	कभी शासन करने में समर्थ न हो।
मा,	निषेधार्थे॥	न ही पापाचार के प्रशंसक हम पर शासन करें।
अघशंस्सः	योऽघं पापं शंसति सः॥	
अस्मिन्	वर्त्तमाने प्रत्यक्षे॥	ऐसे निर्लोभ, प्रजा के हितचिन्तक शासक के नेतृत्व में;
गोपतौ	यो गवां पतिः स्वामी तस्मिन्॥	जो गो=इन्द्रियों का स्वामी अर्थात् जितेन्द्रिय हो, वही गो=पृथ्वी, राष्ट्र का नेतृत्व करने वाला हो क्योंकि उसी के नेतृत्व में प्रजा तथा गाय आदि जीवों की रक्षा और वृद्धि संभव है;
बह्वीः	बह्वयः अत्र॥ वा छन्दसि। (अष्टा०६।१।१०६) अनेन पूर्वसवर्णदीर्घादेशः॥	बहुसंख्य प्रजा
ध्रुवाः	निश्चलसुखहेतवः॥	निश्चल सुख को पाने वाली
स्यात	भवेयुः॥	हो।
यजमानस्य	यः परमेश्वरं सर्वोपकारं धर्मं च यजति तस्य विदुषः॥	हे प्रभु! सदैव तुझ परमेश्वर का ही यजन-पूजन करने वाले, सर्वोपकारी, धर्माचरण में प्रवृत्त इस उपासक के
पशून्	गोऽश्वहस्त्यादीन् श्रियः प्रजा वा॥ श्रीर्हि पशवः। (शत०१.६.३.३६) प्रजा वै पशवः॥ (शत०१.४.६.१७)॥	परिवार, धन-सम्पदा तथा गाय-घोड़े आदि पशुओं की चोरवृत्ति भ्रष्टाचारियों से
पाहि	रक्ष॥ अयं मन्त्रः। (शत०१.५.४.१-८) व्याख्यातः॥ १॥	सदैव रक्षा कीजिए।

तत्त्वबोध–

१. इषे – (इषु इच्छायाम्[१] , इष गतौ[२] + क्विप् = इष् + ङे = इषे, 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः'[३] , इत्यन्तोदात्तः = इषे) जीवन निर्वाह के लिए प्राथमिक आवश्यकता अन्न की होती है, स्वभावतः अन्न-प्राप्ति ही प्राथमिक इच्छा भी रहती है। अन्न से ही शरीर को गति प्राप्त होती है।

२. ऊर्जे – (ऊर्ज बलप्राणनयोः[४] + क्विप् = ऊर्ज् + ङे = ऊर्जे, 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः'[५] , इत्यन्तोदात्तः = ऊर्जे) अन्न केवल भूख की निवृत्ति मात्र के लिए न हो, अपितु वह ऊर्जा देने वाला भी होना चाहिए, जिससे शरीर में बल एवं प्राणशक्ति का संचार हो।

३. विवाह संस्कार में सप्तपदी के नाम से प्रचलित सात संकल्पों में 'इषे एकपदी भव' तथा 'ऊर्जे द्विपदी भव' का साक्षात् दर्शन इस मन्त्र में होता है। अप्रत्यक्ष रूप में शेष पाँच संकल्प भी इसी मन्त्र में निहित हैं।

४. श्रेष्ठतमाय, कर्मणे – श्रेष्ठतमाय, कर्मणे – अन्न से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग किसके लिए हो? श्रेष्ठतम कर्म के लिए। शतपथ ब्राह्मण 'श्रेष्ठतम कर्म' को 'यज्ञ' नाम देता है – 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'[६] । इस 'यज्ञ' अर्थात् 'श्रेष्ठतम कर्म' को ही यजुर्वेद में प्रथम धर्म कहा गया है।[७]

वेद में की गई प्रार्थनाएँ केवल वचन मात्र की प्रार्थनाएँ नहीं हैं अपितु प्रार्थना के अनुरूप पुरुषार्थ करना भी आवश्यक है। प्रार्थना से उपासक को आत्मबल प्राप्त होता है, जिससे वह और भी उत्साह से 'श्रेष्ठतमाय, कर्मणे' उत्तमोत्तम कर्म के लिए प्रवृत्त होता है।

प्रशस्य + इष्ठन् = श्र + इष्ठन् (प्रशस्य श्रः[८]) = श्रेष्ठः। पुनः अतिशायन अर्थ में ही 'तमप्' प्रत्यय करके श्रेष्ठतम शब्द निष्पन्न होता है। 'इष्ठन्' प्रत्यय नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'[९] सूत्र से 'श्रेष्ठ' शब्द आद्युदात्त हुआ, पुनः 'तमप्' प्रत्यय पित् होने से तथा प्रयुक्त 'ङे' विभक्ति भी पित् होने 'अनुदात्तौ सुप्पितौ'[१०] सूत्र से अनुदात्त हुए और इस प्रकार 'श्रेष्ठतमाय' यह सम्पूर्ण पद आद्युदात्त हुआ। 'कर्मणे' पद में डुकृञ् करणे धातु से कर्म में 'सर्वधातुभ्यो मनिन्'[११] सूत्र से मनिन् प्रत्यय होकर 'कर्मन्' शब्द बना। चतुर्थी विभक्ति में प्रयुक्त 'ङे' प्रत्यय अनुदात्त है, 'मनिन्' प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'[१२] से 'कर्मणे' शब्द आद्युदात्त हुआ। इसप्रकार 'श्रेष्ठतमाय, कर्मणे' ये दोनों पद ही विशेषण विशेष्य बनकर सम्प्रदान में प्रयुक्त चतुर्थी विभक्ति की प्रधानता न बताकर श्रेष्ठतम कर्म की प्रधानता को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

५. आ, प्यायध्वम् – यज्ञ ही क्यों? क्योंकि परस्पर सर्वविध उन्नति का आधार यह 'यज्ञ' अर्थात् 'श्रेष्ठतम कर्म' ही होता है। वेद में प्रयुक्त 'यज्ञ' शब्द बहुत व्यापक एवं उदात्त अर्थ वाला है। इसे केवल 'अग्निहोत्र' शब्द के साथ जोड़कर देखना न्यायसंगत नहीं है। यज्ञीय व्यवहार में वे सब संभावनाएँ निहित होती हैं, जिनसे उन्नति के समस्त द्वार खुल जाते हैं। शतपथकार ने 'श्रेष्ठतम कर्म' को 'यज्ञ' नाम बहुत ही

---

१. दिवादिगण, परस्मैपदी।
२. तुदादिगण, परस्मैपदी। ३. अष्टा० ६.१.१६२॥
४. चुरादिगण, परस्मपदी। ५. अष्टा० ६.१.१६२॥
६. 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' – शत० ब्रा०१.७.१.५॥
७. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥ –यजु० ३१.१६॥
८. अष्टा० ५.३.६०॥
९. अष्टा० ६.१.१९७॥
१०. अष्टा० ३.१.४॥
११. उणादि० ४.१४५॥
१२. अष्टा० ६.१.१९७॥

ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १७, १८ व १९ नवम्बर (शुक्रवार, शनिवार व रविवार) २०२३ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्यजगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की दुकान लगती हैं। इस वर्ष से स्टॉल किराया २०००=००रूपये प्रति स्टॉल किया गया है। खुले में या अपनी इच्छानुसार स्टॉल लगाना निषिद्ध रहेगा। आप अपना पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य में सहयोग करावें। जिन महानुभावों की पहले राशि जमा होगी उस क्रम से स्टॉल का निर्धारण होगा। ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन में तीन आधार रहेंगे- १- आर्य धार्मिक पुस्तक, २- हवन सामग्री, ओ३म् ध्वज आदि, ३- दवाईयाँ। आपको जितनी स्टॉल की आश्यकता है उसी अनुरूप राशि बैंक ड्रॉफ्ट या नगद या ऑनलाइन जमा करावें।

स्टॉल सुविधा:- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज-** ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- १. स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। २. अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। ३. बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। ४. स्टॉल व्यवस्थापक को राशि की रसीद दिखाकर स्टॉल संख्या प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। ५. आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित की जायेगी। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोट:-** किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

सम्पर्क-देवमुनि- ७७४२२२९३२७

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों से निवेदन

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान अजमेर में आने वाले सज्जनों के निवास-भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था ठीक से चल सके, इसके लिए आप अतिथियों के सहयोग की अपेक्षा है। जो भी अतिथि यहाँ कम या अधिक दिन रुकना चाहें तो आने के कम से कम दो दिन पूर्व परोपकारिणी सभा या ऋषि उद्यान के कार्यालय में सूचना देकर स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लेवें। सूचना में अपना नाम, पता, दूरभाष व साथ में आने वाले व्यक्तियों की संख्या, उनकी अवस्था (आयु), स्त्री या पुरुष सहित बता देवें। शौचालय की सुविधा भारतीय या पाश्चात्त्य अपेक्षित है? आपके यहाँ पहुँचने व प्रस्थान का दिन और समय तथा भोजन ग्रहण करेंगे या नहीं, यह भी स्पष्टता से बता देवें। आधार कार्ड की छाया प्रति साथ लाएं। यह सब लिखकर व्हाट्सएप पर भेज देंगे तो श्रेष्ठ है।

आपकी सूचनाओं के होने पर आपके लिए व्यवस्था समुचित की जा सकेगी। अचानक बिना सूचना के आने पर होने वाली असुविधा व कष्ट से आप बच सकेंगे। साथ ही इससे यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भी अनावश्यक असुविधा से बचाने में सहायता होगी। आशा है आपका समुचित सहयोग मिल सकेगा। **सूचना हेतु सम्पर्क-**

ऋषि उद्यान कार्यालय - ०१४५-२९४८६९८ **परोपकारिणी सभा कार्यालय** - ०१४५-२४६०१६४
व्हाट्सएप - ८८९०३१६९६१ **सम्पर्क का समय** - ११ से ४ बजे तक
(किसी एक सम्पर्क पर सूचना देना पर्याप्त रहेगा) **निवेदक - मन्त्री**

के तीसरे अध्याय का पहला ह और ऋग्वेद के आठवें मण्डल के ४४वें सूक्त का भी पहला मन्त्र है' जहां किसी स्थल पर भी 'स्वाहा' शब्द मन्त्र का अङ्ग नहीं है। बाहर से यह शब्द जोड़े ही वहां जाते हैं जहां आहुति देना इष्ट हो। यदि श्री स्वामी जी को 'जप' इष्ट होता तो कुछ संकेत करते । इसलिये यदि आप इस मन्त्र को केवल 'जाप' में प्रयोग करते हैं तो स्वामी जी महाराज के अभिमत निर्देश का विरोध करते हैं। 'फर्दे जुमं उल्टी तो नहीं है' बिल्कुल सीधा है, मुजरिम जो चाहे सो कह सकता है।

श्री स्वामी जी ने जो कल्प निर्धारित किया था वह तो बहुत सुन्दर था। असली कॉपी में वही था, तीन मन्त्र स्पष्ट और तीन समिधाएँ स्पष्ट और उनका प्रयोग स्पष्ट। 'कल्प' को बिगाड़ा तो उसने जिसने प्रमाद से अकारण बीच में 'अयन्त इध्म' वाला मन्त्र प्रक्षिप्त कर दिया। एक अच्छे कल्प की सुन्दरता नष्ट हो गई। परस्पर विरोध भी और असंगति भी और सभी विचारकों के लिये उलझन। गाय ने तो दूध अच्छा दिया था। पानी मिलाने वाले ने मिलाया और मिट्टी ऊपर से मिल गई। दूध का गुण बिगड़ गया और गाय की बदनामी हुई। मुझे तो यह ऋषि की वास्तविक भक्ति प्रतीत नहीं होती। ऋषिवर का तो स्पष्ट आदेश है कि बुद्धि के छन्ने से छानकर दूध पिये। ऋग्वेद भी कहता है कि "सक्तुमिव तितउना" अर्थात् जैसे सत्तू को चलनी से छानकर खाते हैं इसी प्रकार ग्रन्थों को भी छान कर मानना चाहिये। मैंने कभी यह संकेत नहीं किया कि आपने गृह्य-सूत्रों आदि को नहीं देखा। देखा तो मैंने भी है, आपके बराबर न सही। पाठ्य ग्रन्थों की सूची देने से क्या लाभ? मैं संस्कारविधि के भी असाधारण मूल्य को स्वीकार करता हूँ। परन्तु दूध में पढ़ी हुई मिट्टी को दूध नहीं मानता। मैंने श्री रामावतार शर्मा का लेख भी वेदवाणी में पढ़ा था और उसका उत्तर भी उसी पत्र को भेजा था अब यह लेख अन्यत्र भी छपा है। मैं अलग-अलग हर पत्र को नहीं लिख सकता। यदि सम्पादक महोदय जनता के समक्ष दोनों पक्ष रखना स्वीकार करेंगे तो मेरे उत्तर को भी छाप देंगे। मैंने उत्तर में केवल प्रकृत-विषय तक ही अपने को सीमित रखा है। यदि अन्य बातों की भी मीमांसा की जायगी तो विषयान्तर हो जायेगा।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी -

श्रद्धेय श्री पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय ने 'अयन्त इध्म आत्मा' इस मन्त्र से समाधान के विरुद्ध एक लेख आर्यमित्र में छपाया था। उसमें उन्होंने अपने पक्ष में और इस मन्त्र से समिदाधान के विरुद्ध सात हेतु दिये थे। मैंने उन सातों हेतुओं की हेत्वाभास मानकर सातों हेतुओं का खण्डन आर्यसंसार मासिक पत्र में प्रकाशित कराया। श्री उपाध्यायजी ने अपने हेतुओं की पुष्टि और मेरी आलोचना के खण्डन में कुछ न लिखकर मेरी इस मान्यता पर आपत्ति लिखकर आर्यसंसार में छपने को भेजी कि- "संस्कारविधि ऋषि दयानन्द का बनाया सर्वोत्तम गृह्यसूत्र है।" मैंने इसका उत्तर 'आर्यसंसार' के उसी अंक में दे दिया। पीछे श्री उपाध्याय के दो लेख फिर पढ़ने को मिले (१) - 'मेरी समझ में नहीं आया' इस शीर्षक से 'आर्यसंसार' में (२) - 'उलझन अभी बनी है।' इस शीर्षक से 'वेदवाणी' में। इन दोनों लेखों को पढ़कर मुझको बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे आश्चर्य के कुछ कारण ये हैं-

१-जब कि श्री उपाध्यायजी के सातों हेतुओं का खण्डन हो गया और एक प्रकार से उसको माननीय उपाध्यायजी ने स्वीकार भी कर किया, क्योंकि उनके पक्ष और मेरी आलोचना के विरुद्ध कुछ न लिखकर एक और नये प्रश्न पर ही उन्होंने लेख लिखकर भेजा था। फिर 'समझ में न आने' और 'उलझन बनी रहने' का क्या कारण शेष रह गया? उन हेतुओं पर संक्षेप से फिर दृष्टि डाल ली जाय जो ऊपर से गिनने में सात से पर थे अधिक।

२- प्रथम और सबसे बड़ा हेतु यह या असल कॉपी में 'अयन्त इध्म' मन्त्र नहीं था।

इस हेतु पर मैंने ६ प्रश्न किये थे जिनमें से एक का भी उत्तर श्री उपाध्याय ने नहीं दिया। उन पर विचार करने से सारी उलझन सुलझ जाती। कम से कम इतना ही विचारकर लिया जाए कि यदि असल कॉपी में यह मन्त्र नहीं था और प्रेस कॉपी में बढ़ा दिया गया और हाशिये पर ही बढ़ाया गया, तो इसमें आपत्ति क्या है? या असली कॉपी ईश्वरीय इलहाम थी जो उसमें कभी भी कुछ बढ़ाया नहीं जा सकता था? यदि आप कहें यह ऋषि ने नहीं बढ़ाया या बढ़वाया तो मैं पूछता हूं कि आपके पास इसका क्या प्रमाण है? जब कि ऋषि के पत्रों ये स्पष्ट है कि यह भाग स्वयं ऋषि ने छपने को भेजा था। एक नया प्रश्न जो श्री उपाध्याय ने उठाया है वह यह है कि असली कॉपी लिखते समय ऋषि, ऋषि निर्भ्रान्त या साक्षात्कृतधर्मा न थे और ये गुण उनमें प्रेस कॉपी बनाते समय ही आ गये? इस प्रश्न के साथ ही श्री उपाध्यायजी के प्रथम और सबसे प्रबल हेतु को जोड़ लिया जाए जिसको सब लेखों में अब तक लिखा है असल कॉपी में नहीं था। तो ऋषि दयानन्द के लिखे सारे ग्रन्थ श्री उपाध्यायजी के शब्दों में कूड़ा-करकट हो जायेंगे, क्योंकि प्रथम बार की संस्कार विधि जो ऋषि ने सं. १९३२ विक्रमी में लिखी थी वह सं. १९४० में नहीं रहीं' उसमें बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया और स्वामीजी ने स्वयं किया। तथा सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण सं. १९३१ विक्रमी में हुआ था और वह ऋषि ने स्वयं१९३९ विक्रमी में बदल दिया।' श्री उपाध्यायजी के इन हेतुओं से पहले संस्करण ही प्रामाणिक ठहरेंगे और अन्य दूसरे संस्करण ''कूड़ा-करकट निकाल फेंकने के योग्य ठहरेंगे।''

दूसरे संस्करणों में जो कुछ पहलों से अधिक या भिन्न है वह अमान्य है, क्योंकि वह पहले संस्करण में नहीं था और यह प्रश्न श्री उपाध्यायजी का इन संस्करणों को कूड़ा-करकट बना देगा कि-''क्या पहले सत्यार्थ प्रकाश और पहली संस्कारविधि के लिखते व छपते समय ऋषि या निर्भ्रान्त या साक्षात्कृतधर्मा न थे और ये गुण दूसरे संस्करणों के समय ही आ गये?'' महान् आश्चर्य है कि इतने बड़े दार्शनिक विद्वान् और महान् लेखक की लेखनी से यह क्या लिखा जा रहा है? दूसरा कारण मेरे आश्चर्य का यह है कि- ''ये जितने बड़े-बड़े पण्डित हैं इनमें से अधिक पण्डित उलझनें सुलझाने के स्थान में उलझनें उत्पन्न करने में क्यों लग गए हैं?'' हमारी यज्ञशालाएँ प्राय: सर्वत्र नये-नये शास्त्रार्थ शूरों का संग्राम क्षेत्र बन रही है। सामग्री किन मन्त्रों से डाली जानी चाहिये किन से नहीं इस पर सर्वत्र झगड़ा होता है। इसी प्रकार कई और भी प्रश्न है। एक नया झगड़ा यज्ञशालाओं में 'अयन्त इध्म' इस मन्त्र से समिदाधान का और खड़ा हो जाएगा।

ये पंक्तियाँ तो उपाध्यायजी ने सर्वथा वैसे ही लिख दी हैं कि- ''जब कभी भूल सामने आती है तो कहने लगते हैं कि ऋषि थे, साक्षात्कृतधर्मा थे, निर्भ्रान्त थे। अत: यह भूल भूल नहीं है'' आदि। 'अयन्त इध्म' इस मन्त्र पर श्री उपाध्यायजी के लेख के विरुद्ध मैंने लिखा है और ''श्री पं. रामावतारी पञ्चतीर्थ ने। हमारे दोनों के ही लेखों में यह हेतु कहीं नहीं दिया गया है। न हमारे दोनों के लेखों में यह कहीं लिखा गया है कि ऋषि दयानन्दजी के ग्रन्थों में संशोधन नहीं होना चाहिए। मेरा कहना केवल यह है कि- ''भूल का नाम लेकर मूल को न मिटाय जाए'' और कूड़ा-करकट कहकर लाभदायक शिक्षाप्रद वास्तविक वाक्यों को न निकाल दिया जाए। श्री उपाध्याय जी जिनके लिए अगाध श्रद्धा रखता हूं और लोग भी रखते हैं उनका उठाया आन्दोलन उपेक्षा करके टाल देने योग्य नहीं है। उससे समाज में बहुत झगड़ा बढ़ सकता है जैसा कि- श्री उपाध्यायजी का हेतु रहित आग्रह है इससे और अधिक भय होता है, क्योंकि सर्वसाधारण जन हेतुओं को अधिक नहीं समझते हैं आग्रहों से शीघ्र आग्रहीत हो जाते हैं। श्री उपाध्यायजी

अब अपने हाथ में ले लें तो मैं उनका तुच्छ सेवक और उनका भक्त भी उनको अपनी योग्यता के अनुसार सहयोग दूंगा। मेरा विचार यह है कि - 'सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि में प्रक्षेप कुछ भी नहीं है पर कुछ अशुद्धियाँ हैं- ऐसी अशुद्धियाँ प्राय: मुद्रकों से हुआ ही करती है और प्रूफ देखने वालों की असावधानी या अयोग्यता से रह जाती हैं। ऐसी भूलें भी बहुत नहीं है यदि मिलकर कार्य करेंगे और ग्रंथों को शुद्ध कर सकेंगे तो आर्य जनता का महान् उपकार होगा। पर यह अचानक, अकारण और अनावश्यक उलझन जो श्री उपाध्यायजी ने खड़ी कर दी है, उसपर आप हट न करें। उसमें समाज को भारी हानि होगी, ''जिसे शास्त्रार्थ करनेवाले ही अनुभव कर सकते हैं।'' दूसरे बड़े-बड़े विद्वान् भी यह अनुभव नहीं कर सकते कि ऐसी उलझनों से और कितनी उलझनें खड़ी हो जायेंगी?

श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय -

'आर्य संसार' के वैशाख अङ्क में विद्वद्वर श्री पं. अमरसिंहजी आयपथिक ने मेरे एक आर्यमित्र के लेख 'एक पुरानी उलझन' की मीमांसा की है। श्री पं. जी की सद्भावना मुझे सदैव प्राप्त रही है और इस लेख में उन्होंने जो मेरे प्रति प्रशंसा के शब्द लिखे है, उनका मैं आभार मानता हूँ। श्री पं. जी का लेख विद्वतापूर्ण और असाधारण अध्ययन और परिश्रम का परिचायक है, परन्तु मुझे एक कमी प्रतीत होती है। मैंने 'असली कॉपी' प्रेस कॉपी को स्वयं अपनी आंख से देखा और मिलान किया। १८८४ के छपे पहले संस्करण और उसके पश्चात् छपे दो-तीन संस्करणों का मिलान किया। इसके अतिरिक्त परित्यक्त संस्करण भी मेरे पास है। श्री पं. जी ने इनको नहीं देखा। अत: प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में उन्होंने अनुमान आदि से काम लिया। यदि वे या अन्य बहुत से विद्वान् जिनकी ओर उन्होंने अपने लेख में संकेत किया है स्वयं देख लें तो उन्होंने जो पांच-छ: प्रश्न मुझ पर किये हैं, उन सबका उत्तर वही कापियों दे देगी और श्री पं. जी की तर्क-पद्धति भी कुछ भिन्न ही होगी। प्रत्यक्ष अभाव में 'मुद्दई मुस्त और गवाह चुस्त' की कहावत लागू हो जाती है। मैं कोई 'नई उलझन' पैदा नहीं कर रहा हूँ। संस्कार विधि के पहले दो-तीन संस्करण छापने वालों के समक्ष भी यह उलझनें थीं। श्री स्वामीजी महाराज इस संसार में न थे। 'परोपकारिणी' की परिस्थिति भी चिन्ताजनक रही होगी। उस समय भूल सुधारना भी सुगम था।

परन्तु उस समय 'लोपा-पोती से' काम चलाया गया। इन ७६ वर्षों में भूमि को कठिनता बढ़ गई है, परन्तु उलझनें तो ज्यों की त्यों बनी हैं। पं. जी के लेख के अनेक भागों पर मुझे बहुत कुछ वक्तव्य है, परन्तु मैं यथाशक्ति केवल 'सार' को ही लेता हूँ जिससे विषयान्तर न हो जाय। श्री पं. जी का पक्ष यह है कि स्वामीजी महाराज 'ऋषि' थे, 'मन्त्र द्रष्टा' थे, अपने युग के 'कल्पकार' थे। अत: उन्होंने जो विशेष 'कल्प' बनाया वह अन्य आचार्यों से भिन्न होता हुआ भी माननीय है।'' इतना स्वीकार करने में मुझे आपत्ति नहीं। परन्तु जिसको आप विशेष 'कल्प' कहते हैं उसका स्वरूप 'कल्प' का है ही नहीं। यदि स्वामीजी को पुराने आचार्यों से भिन्न किसी विशेष निज 'कल्प' की इष्टि होती तो वह आरम्भ में अर्थात् 'असली कॉपी' में ही इसका द्योतन करते और अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते। अन्य स्थान से उद्धरण करने में असावधानी हो सकती है।

नये 'कल्प' बनाने में आरम्भ से सावधान रहना पड़ता है और संशोधन की आवश्यकता कम पड़ती है। ''हमारे सामने जो प्रचलित संस्कार विधि'' है और जिसका पं. जी ने सम्पोषण किया है उस पर दृष्टि डालने से विशेष 'कल्प' का स्वरूप दिखाई नहीं देता कैसे? देखिये, नये 'कल्प' का निर्देश निश्चित शब्दों में होना चाहिये, संदिग्ध न हो। न उनको कार्यान्वित करने वाले को कुछ काट-छांट करनी पड़े। श्री पं. जी यज्ञ करने या

कराने में बिना काट-छांट किये कार्य चला ही नहीं सकते वस्तुत: उनके समक्ष उलझनें हैं और दूसरों के समक्ष भी श्री पं. जी काट-छाँट करने पर बाधित होते हैं'' परन्तु कहते नहीं, सब से पहले यह पंक्ति आती है- 'तीन' लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबा उनमें से एक-एक नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे। इस प्रकार 'एक-एक' वाला वाक्य तीन स्थानों पर आया।

इस निर्देश का आप कैसे पालन करते हैं ? एक-एक मन्त्र से।'' कितना स्पष्ट निर्देश है, 'आपके मतानुसार इस इस विधि की, जो कि ''मन्त्र द्रष्टा'' ''ऋषि'' और ''कल्पकार'' द्वारा दी हुई है आपने अवहेलना की, क्योंकि बिना अवहेलना किये आपके पक्ष की सिद्धि न होगी। आप दोनों मन्त्रों से एक आहुति देने को इस विधि का अपवाद मानते हैं। यह तो विचित्रतम स्थिति है। विधि कहीं न हो और अपवाद हो जाय। पाणिनि में विधि और अपवाद के अनेक स्थल मिलेंगे। परन्तु ऐसा एक भी नहीं। यह काटने-छांटने की पहली क्रिया हुई जो आपके पक्ष में आवश्यक है। आगे चलिये- ''सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्र जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा।। इदमग्नये जातवेद से इदन्नमम।''

यहां 'स्वाहा' और 'त्याग' दोनों है। जाप में तो ऐसा नहीं होता। यहां भी अवश्य ही आप काट-छाँट करते होंगे। सांख्यायन का प्रमाण यहां समानान्तर तो नहीं रहा। यदि ऋषि को ऐसा अभीष्ट होता तो 'जप' का आदेश देते और 'स्वाहा' तथा 'इदन्नमम' न लिखते न 'इन मन्त्रों से' ऐसा लिखते। ''आपको बिना काटे-छाँटे तो एक पग भी गति नहीं है।'' काटने छांटने से आप वह स्वीकार कर लेते हैं कि 'भूल है' उसका सुधार होना चाहिए। क्यों ऐसा करने से 'ऋषित्व' और 'मन्त्रद्रष्टृत्व' की अवहेलना होती है या नहीं? या यह आक्षेप केवल दूसरों के लिये है। जब संशोधन करना है तो सीधा-सीधा मान लीजिये कि असली कॉपी ठीक थी। प्रेस कॉपी में किसी ने भूल की, संशोधन नहीं। यह विकृत रूप हो गया और विकृति इतनी भद्दी तरह से की गई कि भूल पकड़ में आ गई। यदि आजकल की प्रचलित संस्कार विधि को आप बिना काटे-छांटे तद्वत् पालन कर सकते तो चाहे विधि पुरानी होती या नई, प्राचीन ऋषियों की होती या स्वामी दयानन्द का नया कल्प, यज्ञ करने कराने वालों के समक्ष उलझन तो न होती। इस समय वो दो ही विकल्प हैं, या काट-छांट कीजिये और जो आक्षेप आप मेरे पक्ष पर करते हैं। उसको अपने ऊपर ओढ़िये या चुपचाप बैठ जाइये और कहिये कि यह 'कल्प' अव्यवहार्य है। बात तो केवल इतनी ही है। यही संगठन की बात! आप मेरी मनोवृत्ति पर विचार करें। जब मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात हो गया कि महर्षि जी को यह इष्ट था तो मैं दूसरों के कहने से चाहे वह दो-चार हो या दस-बीस, व्यक्ति हों या सभा, केवल संगठन के लिये सत्यमार्ग को को छोड़ दूँ? संगठन और उसके प्रस्ताव तो बदलते रहते हैं और बदल सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी आँखों से देखें, परन्तु इतनी मांग तो अन्यायपूर्ण न होगी कि जब तक आप अपनी आँखों से न देख लें मुझे अपनी आंखों से देखे हुए के विरुद्ध प्रेरणा न करें।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी-

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पं. गंगाप्रसादजी उपाध्याय के 'अयन्त इध्म आत्मा' मन्त्र सम्बन्धी लेख पर मीमांसा की थी जो कि 'आर्य संसार' मासिक कलकत्ता में छपी है। मैंने उसमें वर्तमान संस्कार विधि की पुष्टि की है और ऋषि दयानन्द जी को एक कल्पकार माना है। माननीय उपाध्यायजी ने मेरी इस मान्यता पर अपने एक लेख में दो आपत्तियां उठाई है। आदरणीय उपाध्यायजी ने वह आपत्तियां उठाकर मुझको अपनी मान्यता स्पष्ट करने का शुभ अवसर प्रदान किया है। इसके लिये मैं श्री उपाध्यायजी का धन्यवाद करता और आभार मानता हूँ।

मेरी कामना है कि श्री उपाध्यायजी सौ वर्ष से भी अधिक जियें और अपनी लेखनी से आर्यसमाज को सदा लाभ पहुंचाते रहें। बड़े मतभेदों को प्रकट कर देने से बहुतों को कुछ पढ़ने और विचार करने का अवसर मिल जाता है। मेरी मान्यता यह है कि ऋषि दयानन्दजी एक कल्पकार ऋषि थे और 'संस्कार-विधि' उनका बनाया हुआ एक अत्युत्तमात्र गृह्य-सूत्र है।'' श्री उपाध्यायजी ने मेरी इस मान्यता पर जो कुछ लिखा है। उसको उन्हीं के शब्दों में उनके नाम के साथ रखकर मैं अपना विचार अपने नाम से व्यक्त करूंगा-

श्री उपाध्यायजी- जिसको आप विशेष कल्प कहते हैं उसका स्वरूप कल्प का है ही नहीं। यदि स्वामी जी को पुराने आचार्यों से भिन्न किसी विशेष निज कल्प की इष्टि होती तो वह आरम्भ में अर्थात् 'असली कॉपी' में ही उसका द्योतन करते और अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते।

मैं (अमर सिंह आर्य पथिक)- इस सन्दर्भ के तीन भाग हैं- (१) उस (संस्कार विधि) का स्वरूप कल्प का है ही नहीं। श्री उपाध्यायजी ने कल्प का स्वरूप बताया होता तो संस्कार विधि के स्वरूप से उसका मिलान करके देखा जाता। (२) स्वामीजी को अन्य आचार्यों से भिन्न निज कल्प इष्ट होता तो वह आरम्भ में ही उसका द्योतन करते- किसी आचार्य ने भी ऐसा द्योतन नहीं किया है कि मैं अन्यों से भिन्न निज कल्प बनाता हूं। पर बनाये सब ने अन्यों से कुछ-कुछ भिन्न ही हैं। यदि भिन्नता न करनी होती तो दूसरे कल्प बनाये ही क्यों जाते। (३) अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते?

क्रमशः

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।